International Journal of Information Movement *Vol. 8 Issue VIII (December, 2023)*
Website: www.ijim.in *ISSN: 2456-0553 (online)* Pages 6-10

योगसूत्र एवं औपनिषदिक नियम के स्वरूप का विवेचन

डॉ0 जन्मेजय
असिस्टेंट प्रोफेसर,
योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
पोखड़ा, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड़
Email-id: yogijanmejay@gmail.com

ध्रुब सिंह नेगी
टीचिंग एसोसिएट,
योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
पोखड़ा, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड़

शोध सारः–
महर्षि पंतजलि कृत योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग अत्यन्त प्रचलित एवं श्रेष्ठ साधना पद्धति है; जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि इन आठ अंगों का सारगर्भित वर्णन किया गया है। यम अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का पालन सार्वभौमिक है, जिसमें हमारी वयैक्तिक, नैतिक, सामाजिक, वैश्विक उन्नति के मूल्य अन्तर्निहित है। जबकि नियम– शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान है। जो हमारे शारीरिक मानसिक स्तर पर नियन्त्रण कर व्यक्तिगत रूप से उत्थान में सहायता प्रदान करता है। इन नियमों के पालन से हम मनोशारीरिक रूप से अष्टांग योग के उत्तरोत्तर अंगो के पालन में क्रमशः सफल हो सकते है योगसूत्र के अतिरिक्त उपनिषदों में भी नियम का वर्णन प्राप्त होता है। योगसूत्र में 5 नियम का वर्णन किया गया है जबकि उपनिषदों में 10 नियम का वर्णन प्राप्त होता है। अतः हमें अपने आत्मिक उत्थान के लिए इन नियमों के स्वरूप का जानना परम आवश्यक हो जाता है। उपनिषदों के समान ही वशिष्ठ संहिता एवं अन्य योग शास्त्रों में दस–दस नियमों का प्राप्त वर्णन औपनिषदिक नियम के स्वरूप को प्रमाणिकता प्रदान करता है। अष्टांग योग साधना में इन नियमों को सम्मिलित कर हम अपनी योग साधना को और अधिक उत्कृष्ट बना सकते है।

मुख्य बिंदुः– योगसूत्र वर्णित नियम, औपनिषदिक नियम।

1.0 भूमिकाः–

योग विद्या मानव जीवन के कल्याण की वैदिक शिक्षा है, जो भारतीय संस्कृति के वैदिक ज्ञान के स्त्रोत वेद तथा वेदों के सार ग्रन्थों–योग एवं उपनिषदों में सन्निहित है। इन सार ग्रन्थों–योग एवं उपनिषद् में वर्णित योग शिक्षा को सर्व साधारण मनुष्य भी समझ सकता है तथा अपनी योग साधना में आगे बढ़ सकता है। योग तत्वों का वर्णन केवल योग ग्रन्थों में ही नहीं अपितु कुछ मुख्य उपनिषदों में भी सारगर्भित रूप से वर्णन प्राप्त होता है। महर्षि पंतजलि कृत योग सूत्र में वर्णित अष्टांग योग साधना अत्यन्त प्रचलित एवं श्रेष्ठ साधना पद्धति है। अष्टांग योग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।[1] इन आठ अंगों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है– बहिरंग और अन्तरंग।

बहिरंग साधना में अष्टांग योग के प्रथम पांच अंग– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा अन्तरंग साधन में अंतिम तीन अंग– धारणा, ध्यान, समाधि है।

योग साधक बहिरंग साधनों की सिद्धि के बिना अन्तरंग साधनों में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है। प्रारम्भिक दो अंग– यम, नियम हमारे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास का आधार हैं। यम– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का पालन सार्वभौमिक है। इन्हें महाव्रत कहा गया है। यम के अन्तर्गत हमारी व्यक्तिक सामाजिक, वैश्विक उन्नति के नैतिक मूल्य निहित है। जबकि नियम– शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर–प्रणिधान का पालन व्यक्तिगत है, इन सिद्धान्तों के पालन से हम मनोशारीरिक रूप से अष्टांग योग साधना में क्रमशः उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त कर सकते हैं। महर्षि पंतजलि वर्णित 5 नियम के स्वरूप का दृष्टिकोण इस प्रकार है–

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।।[2]

अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान इन पांच अंगो को समष्टि रूप में स्वीकार किया गया है। किन्तु कुछ उपनिषदों में नियम के दस भेदों का वर्णन प्राप्त होता है, जो निम्न है–**तपःसंतोषास्तिक्यदानेश्वरपूजन सिद्धान्तश्रवणह्रीमतिजपव्रतानिदश नियमाः।**[3]
तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्त–श्रवण, ह्री, मति, जप, और व्रत। लेकिन कुछ उपनिषदों में शौच को भी नियम के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।
नारदपरिव्राजकोपनिषद् में संन्यासी को नियमांगों का पालन का उपदेश देते हुए कहा गया है कि शौच, संन्तोष भाव से युक्त व्यक्ति ही संन्यासाश्रम में प्रवेश का अधिकारी है।

1.1 शौच :
शौच अर्थात् सफाई, पवित्रता, शुद्धि। महर्षि पंतजलि के अनुसार अपने अंगों में वैराग्य ही शौच है।[4] व्यासभाष्य के अनुसार, जल, मिट्टी द्वारा शरीर की बाह्य शुद्धि की जाती है, शुद्ध विचारों एवं मैत्री आदि से चित्त के मलों की शुद्धि करना ही आन्तरिक शुद्धि कहलाती है।[5] जाबालदर्शनोपनिषद् में शौच के बारे में बताया गया है कि शरीर के मल को मिट्टी तथा जल के प्रक्षालन से साफ किया जाता है, इसे बाह्यशौच कहते हैं तथा मन के द्वारा पवित्र भावों का चिन्तन एवं मनन करना मानसिक/आन्तरिक शौच कहा गया है।[6] आन्तरिक शौच के विषय में छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि, आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, इसकी शुद्धि होने पर स्मृति निश्चल हो जाती है तथा स्मृति की प्राप्ति होने पर समस्त ग्रंथियाँ निवृत्त हो जाती है।[7] नारदपरिव्राजकोपनिषद् के अनुसार, 'बुद्धिमान पुरूष को प्रतिदिन अपने आचार का पालन करना चाहिए। श्रेष्ठ आचरण तब तक करता रहे, जब तक उसके अन्तःकरण की शुद्धि पूर्ण रूप से न हो जाये। अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर वह संन्यास ग्रहण कर विचरण करें।[8] मैत्रेय्युग्पनिषद् के अनुसार, मन के मैल का त्याग करना ही स्नान है तथा इन्द्रियों को वश में करना ही पवित्रता है।[9] शौच अर्थात् पवित्रता चित्त का शोधन करती है और काम वासनाओं का विनाश करती है। किन्तु ज्ञानरूपी मृत्तिका अर्थात् मिट्टी तथा वैराग्य रूपी जल के द्वारा होने वाली शुद्धि ही यथार्थ शौच कहलाती है।[10]

1.2 संतोषः
योगसूत्र के अनुसार, कर्त्तव्य कर्म के परिणाम तथा प्रारब्ध के अनुसार जिस अवस्था परिस्थिति में रहने का संयोग प्राप्त हो उसी में सन्तुष्टता से रहना और किसी प्रकार की तृष्णा न करना संतोष है।[11] संतोष को आध्यात्मिक गुणों में महत्वपूर्ण माना गया है। सन्तोष शब्द का अर्थ है– सम्यक् प्रकार से तुष्टि। ईशावास्यापनिषद् में संन्तोष को परिभाषित करते हुए कहा कि इस सृष्टि में जो कुछ भी है, वह सब ईश का ही है, केवल उसके द्वारा छोडे गये को ही उपभोग करें। लालच मत करो, क्योंकि वह किसी व्यक्ति का नहीं केवल ईश का ही हैं।[12] नारदोपरिव्राजकोपनिषद् में संन्यासी को संतोष धारण करने का उपदेश देते कहा गया है कि 'हंस व परमहंस संन्यासी को हाथ रूपी पात्र में जो कुछ मिल जाए उतना ही खाकर संतोष करना चाहिए। दूसरे लोगों की इच्छानुसार जो भी प्राप्त हो, उसी में संन्तोष करना चाहिए।'[13] अतः मनुष्य को अपने कर्त्तव्य कर्म में आने वाली बाधाओं का सामना करना तथा अपने उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से पालन कर जो फल प्राप्त हो,उसी से संतुष्ट रहना संन्तोष कहलाता हैं। योगदर्शन में कहा गया है कि संन्तोष से उत्तम सुख प्राप्त होता है।[14]

1.3 तपः
योगसूत्र के अनुसार– स्वधर्म पालन में शारीरिक–मानसिक कष्ट सहन करना ही तप है। व्रत, उपवास आदि भी इसमें ही आते है।[15] तप का अर्थ है–तपना। शरीर,मन, इन्द्रियाँ, तथा प्राणों को विधिपूर्वक वश में करना तप कहलाता हैं। नारदपरिव्राजकोपनिषद् के अनुसार, 'संन्यासी के लिए तप का स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि, 'भिक्षा से प्राप्त अन्न को ग्रहण करना, मौन को धारण करना, तपस्या में लीन होना, ज्ञान प्राप्त करना तथा वैराग्य भाव में लिप्त होना, 'भिक्षु' के परम धर्म कहे गये हैं।[16] शाण्डिल्योपनिषद् में कहा गया है कि विधिपूर्वक कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत आदि से शरीर को सुखाना तप है।[17] मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि, 'जो सर्वज्ञ और सर्वमिद् है, उसका तप भी ज्ञान युक्त होता है। उसी परमब्रह्म से इस ब्रह्माण्ड में नाम, रूप और अन्न उत्पन्न होता है।[18] याज्ञवल्क्योपनिषद् में संन्यासी को शीत–उष्ण, सुख–दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित होने का उपदेश दिया गया है।[19] संन्यास धारण करने के बाद भी संन्यास ग्रहण नहीं किया जाये तो कठोर तप करने पर पुनः ग्रहण किया जा सकता है।[20]

1.4 स्वाध्यायः
योगसूत्र के अनुसार– वेद, शास्त्र, महापुरूषों के लेखन आदि का नियमित रूप से पठन–पाठन और ईश्वर के मन्त्र का जप करना ही स्वाध्याय है।21 स्वाध्याय अर्थात् अपना अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। व्यासभाष्य में स्वाध्याय के बारे में कहा गया है कि उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि मोक्ष उपयोगी शास्त्रों को अध्ययन करना स्वाध्याय है।[22] मोक्षशास्त्र का अध्ययन और प्रणव का जप 'स्वाध्याय' है। स्वाध्याय के द्वारा ईष्टदेव/परमात्मा से योग होता है। आरूण्युपनिषद्' में वर्णन है

कि संन्यासी वेदों में आरण्यकों की आवृत्ति करें अर्थात् उपनिषदों का बार–बार अध्ययन करें।[23] नारदपरिव्राजकोपनिषद् में साधक को उपदेश देते हुए गुरू की सेवा करते हुए वेदों का अध्ययन करने के बाद समस्त विद्याओं का अभ्यास करते हुए बारह वर्ष बाद गुरू सेवा पूर्वक ब्रहमचर्य का पालन करने का उपदेश दिया गया है।[24] तैत्तिरीयोपनिषद् में स्वाध्याय के विषय में कहा है कि स्वाध्याय के साथ प्रवचन को जोड़कर इन दोनों को करना आवश्यक कर्त्तव्य बतलाया गया है[25] और इसी उपनिषद् में कहा है कि स्वाध्याय में प्रमाद मत करो।[26]

1.5 ईश्वर प्रणिधानः
योगसूत्र के अनुसार–ईश्वर की भक्ति अर्थात् मन, वाणी, और शरीर द्वारा ईश्वर के लिए सबकुछ करने का नाम 'ईश्वरप्रणिधान 'है।[27] याज्ञवल्क्योपनिषद् में बताया गया है कि, 'ईश्वर को जीव के रूप में जानकर संन्यासी अश्व, चाण्डाल, गौ तथा गधे आदि सभी प्राणियों को दण्डवत् प्रणाम करता है।'[28] उपनिषदों में 'नारदपरिव्राजकोपनिषद्' के अनुसार, संन्यासी शान्त रहकर मन, वचन, देह तथा कर्म द्वारा केवल ब्रह्म का ही चिन्तन करें।[29] कठोपनिषद् के अनुसार साधक को ईश्वर की सत्ता तथा उसकी प्राप्ति के विषय में दृढ होकर निरन्तर ईश्वर का चिन्तन और ध्यान करके उन्हें प्राप्त करना चाहिए।[30] सात्विक स्वरूप स्वंय उसके हृदय में प्रत्यक्ष हो जाता है। मुण्डकोपनिषद् में कहा है कि जो पुरूष केवल उस आत्मा की प्राप्ति की इच्छा करता है, उसी साधक के लिए यह आत्मा स्वयं के स्वरूप को प्रकट कर देता हैं।[31] महर्षि दयानन्द जी कहते है कि – ईश्वर प्रणिधान से मनुष्य सुगमता से समाधि की प्राप्ति कर लेता हैं।
औपनिषदिक नियम का स्वरूप इस प्रकार है–

2.0 तपःसंतोषास्तिक्यदानेश्वरपूजन सिद्धान्तश्रवणह्रीमतिजपव्रतानिदश नियमाः।

2.1 तपः
विधिपर्वक अर्थात् वेद आदि शास्त्रोक्त–कृच्छ चान्द्रायण आदि व्रत विधि से शरीर को सुखाना/तपाना ही तप है।[32] जबालादर्शनोपनिषद् का भी ऐसी ही मत है।[33]

2.2 संतोषः
शाण्डिल्योपनिषद् एवं वशिष्ठ संहिता के अनुसार प्रभु की इच्छा से प्राप्त लाभ में संतुष्ट होना संतोष है।[34] जिस स्वतः प्राप्त स्थिति में मनुष्य का मन संतुष्ट रहे उसे संतोष कहते है।[35]

2.3 आस्तिक्यः–
शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार वेदों के द्वारा कहे गये धर्म –अधर्म में विश्वास रखना आस्तिक्य कहलाता है,[36] वशिष्ठ संहिता का भी यही मत है।[37]

2.4 दानः
शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार नीति पूर्वक प्राप्त हुए धन –धान्य आदि को श्रद्धापूर्वक गरीबों (आवश्यक पात्र) को देना ही दान कहलाता है।[38] ठीक इसी प्रकार वशिष्ठ संहिता के अनुसार पीडितों को दिया जाने वाला न्यायार्जित धन दान कहलाता है।[39]

2.5 ईश्वर पूजनः
शाण्डिल्योपनिषद् एवं वशिष्ठ संहिता में विष्णु आदि का पूजन अर्चन करना ही ईश्वर पूजन कहा है।[40]

2.6 सिद्धान्त –श्रवणः
शाण्डिल्योपनिषद् एवं वशिष्ट संहिता में वेदान्त के अर्थ(सिद्धान्त) का चिन्तन करना ही सिद्धान्त श्रवण कहा गया है।[41]

2.7 ह्री (लज्जा):
शाण्डिल्योपनिषद् एवं वशिष्ट संहिता के अनुसार वैदिक एवं लौकिक मार्गों में निन्दित कार्य करने में लज्जा (संकोच) का अनुभव होना ही ह्री है।[42]

2.8 **मतिः**
शाण्डिल्योपनिषद् एवं वशिष्ट संहिता के अनुसार शास्त्र विहित कर्मों में निष्ठा रखना तथा गुरू के आदेश से अतिरिक्त का त्याग मति हैं।[43]

2.9 जपः

शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार विधिपूर्वक गुरू उपदेशित वैदिक मंत्र का जाप करना ही जप है।[44] महर्षि पंतजलि जी ने वैदिक मंत्र ओ३म् (प्रणव) का अर्थ सहित भाव पूर्वक जाप करने को जप कहा है।[45]

2.10 व्रतः

शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार वेदोक्त विधि से अनुष्ठान करना तथा निषेध अनुष्ठान का त्याग करना व्रत कहलाता हैं।[46]

3.0 उपसंहारः

प्रस्तुत शोध पत्र में स्पष्ट है कि महर्षि पतंजलिकृत नियम के अंग शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान है तथा उपनिषदों में नियम के अंग है– तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धान्त–श्रवण, ह्री, मति, जप और व्रत है। इनके द्वारा शौच से बुद्धिमान पुरूष अन्तःकरण की शुद्धि पूर्ण रूप से प्राप्त करता है। सन्तोष की प्रतिष्ठा से व्यक्ति अपने कर्त्तव्य कर्मों का सामना करके अपने उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से पालन कर संन्तोष रूपी सुख प्राप्त करता है। तप की प्रतिष्ठा से व्यक्ति सम्यक् शारीरिक मानसिक धैर्य ज्ञान प्राप्त कर वैराग्य भाव से युक्त हो जाता है। स्वाध्याय की प्रतिष्ठा से व्यक्ति उपनिषदों का बार–बार अध्ययन कर परमात्मा की ओर अग्रसर हो जाता है और ईश्वरप्रणिधान की प्रतिष्ठा से व्यक्ति शान्त मन, वचन, देह तथा कर्म द्वारा केवल ब्रह्म का चिन्तन करता हैं। उपनिषदों के अन्य नियम आस्तिक्य, दान, सिद्धान्त श्रवण, ह्री, मति, जप, व्रत इत्यादि भी इसी प्रकार हमारे आध्यात्मिक विकास में सहायक है।

अतः योग सूत्र एवं उपनिषदों में वर्णित नियम के स्वरूप का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि इन सभी के पालन से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से विकास होता है, जिससे वह ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग की ओर अग्रसरित हो सकता है तथा इन्हें सिद्ध किए बिना साधक योग साधना की अंतिम अवस्था तक नहीं पहुंच सकता है। अतः ये नियमांग शरीर एवं मन की शुद्धि के लिए पालन किये जाते है। अतः नियम के सिद्धान्तों का हमारी व्यक्तिगत योग साधना में महत्वपूर्ण योगदान हैं।

4.0 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि।। योगसूत्र 2/29
2. योगसूत्र– 2/32
3. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1
4. योगदर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0सं0 65
5. व्यासभाष्य –2/32
6. जाबालदर्शनोपनिषद्– 1/2
7. छान्दोग्योपनिषद्– 7/26/2
8. नारदपरिव्राजकोपनिषद् –5/62
9. मैत्रेय्युग्पनिषद्–2/2
10. मैत्रेय्युग्पनिषद्–2/9
11. योगदर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0सं0 66
12. ईशावास्योपनिषद् –1
13. नारदपरिव्राजकोपनिषद्– 7/5
14. योगसूत्र –2/42
15. योगदर्शन,गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0सं0 43
16. नारदपरिव्राजकोपनिषद्– 5/60
17. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1
18. मुण्डकोपनिषद् –1/1/9
19. याज्ञवल्क्योपनिषद्
20. शाट्यायनीयोपनिषद् –19
21. योगदर्शन,गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0सं0 43
22. व्यासभाष्य 2/1
23. आरूण्युपनिषद्–2
24. नारदपरिव्राजकोपनिषद् –1/2
25. तैत्तिरीयोपनिषद् अथ शीक्षावल्ली, नवम एकादश अनुवाक–1
26. तैत्तिरीयोपनिषद् अथ शीक्षावल्ली एकादश अनुवाक–1
27. योगदर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0सं0 44
28. याज्ञवल्क्योपनिषद्
29. नारदपरिव्राजकोपनिषद् –3/60

30. कठोपनिषद् –2/3/13
31. मुण्डकोपनिषद्– 3/2/3
32. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1
33. जाबालदर्शनोपनिषद् –2/3
34. शाण्डिल्योपनिषद् –1/2/1
35. वशिष्ठ संहिता –1/55
36. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1
37. वशिष्ठ संहिता –1/56
38. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1
39. वशिष्ठ संहिता –1/57
40. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1 तथा वशिष्ठ संहिता– 1/58
41. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1 तथा वशिष्ठ संहिता –1/60
42. शाण्डिल्योपनिषद् –1/2/1 तथा वशिष्ठ संहिता– 1/62
43. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1 तथा वशिष्ठ संहिता –1/63
44. शाण्डिल्योपनिषद् –1/2/1
45. योगसूत्र –1/28
46. शाण्डिल्योपनिषद्– 1/2/1